International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 08-05-2026, Accepted: 08-06-2026, Published: 23-06-2026
Volume 12, Issue 2, 2026, Page No. 204-206

गिर्दा के जनगीत 'जैंता एक दिन तो आलो' में उत्तराखण्ड की लोकसंस्कृति, सांस्कृतिक स्मृति और सामाजिक परिवर्तन की चेतना

डॉ. निधि उप्रेती
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, स्पर्श हिमालय विश्वविद्यालय, देहरादून, उत्तराखण्ड, भारत
DOI: https://doi.org/10.66856/ijhr.2026.12.2.12173

सारांश

उत्तराखंड के जनकवि गिर्दा (गिरीश तिवारी) का साहित्य लोकजीवन, जनसंघर्ष और सांस्कृतिक अस्मिता का सशक्त दस्तावेज है। उनकी कुमाऊँनी रचना "जैंता एक दिन तो आलो" उत्तराखंड की सामूहिक चेतना, सामाजिक आकांक्षाओं और सांस्कृतिक स्मृति का प्रतिनिधि जनगीत है। यह गीत केवल भविष्य के प्रति आशा का स्वर नहीं, बल्कि सामाजिक विषमता, अन्याय और शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध का सांस्कृतिक घोष भी है। प्रस्तुत शोध–पत्र में इस गीत का पाठ–विश्लेषण करते हुए उसमें निहित लोकसंस्कृति, जनभाषा और सामाजिक चेतना का अध्ययन किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि गिर्दा की यह रचना लोकजीवन की संवेदनाओं को अभिव्यक्त करते हुए एक न्यायपूर्ण और समतामूलक समाज की कल्पना प्रस्तुत करती है। गीत में प्रयुक्त कुमाऊँनी भाषा उसकी सांस्कृतिक प्रामाणिकता को सुदृढ़ बनाती है तथा उत्तराखंड की सामूहिक स्मृति को संरक्षित करने का कार्य करती है। इस प्रकार यह गीत लोकभाषा, लोकसंस्कृति और जनचेतना के त्रिवेणी–संगम का उत्कृष्ट उदाहरण है।

मूल शब्दः गिर्दा, जैंता एक दिन तो आलो, लोकसंस्कृति, जनभाषा, सामाजिक चेतना, उत्तराखंड, जनगीत, सांस्कृतिक स्मृति

भारतीय साहित्य की मूल चेतना लोकजीवन से निर्मित हुई है। लोकसंस्कृति किसी भी समाज की आत्मा होती है, क्योंकि उसमें उस समाज की स्मृतियाँ, अनुभव, जीवन–मूल्य और सांस्कृतिक पहचान सुरक्षित रहती है। उत्तराखंड का सांस्कृतिक जीवन भी लोकगीतों, लोककथाओं, पर्व–त्योहारों, श्रम–संस्कृति और सामुदायिक जीवन की समृद्ध परंपरा पर आधारित है। यहाँ का लोकसाहित्य केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक संवाद और सांस्कृतिक संरक्षण का सशक्त उपकरण भी है।[1]

उत्तराखंड के साहित्यिक परिदृश्य में गिरीश तिवारी 'गिर्दा' का नाम विशेष सम्मान के साथ लिया जाता है। वे केवल कवि नहीं, बल्कि जनआंदोलनों के सांस्कृतिक प्रतिनिधि भी थे। उनकी रचनाएँ लोकजीवन की पीड़ा, संघर्ष, आशा और प्रतिरोध की अभिव्यक्ति हैं। गिर्दा ने अपनी कविताओं और जनगीतों के माध्यम से पहाड़ के सामान्य जन को साहित्य के केंद्र में स्थापित किया।[2]

उनकी प्रसिद्ध कुमाऊँनी रचना "जैंता एक दिन तो आलो" उत्तराखंड की जनचेतना का प्रतिनिधि गीत है। यह गीत परिवर्तन, समानता और न्याय की आकांक्षा का गीत है। इसमें लोकभाषा की सहजता और सामाजिक दृष्टि की गहराई एक साथ दिखाई देती है। गीत का मूल स्वर यह है कि अन्यायपूर्ण व्यवस्था स्थायी नहीं है; एक दिन ऐसा अवश्य आएगा जब समाज अधिक न्यायपूर्ण, समानतामूलक और मानवीय होगा।[3]

शोध–समस्या

समकालीन साहित्यिक विमर्श में यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है कि लोकगीत किस प्रकार सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक स्मृति के वाहक बनते हैं। "जैंता एक दिन तो आलो" के संदर्भ में मुख्य समस्या यह है कि यह गीत उत्तराखंड की लोकसंस्कृति, जनभाषा और सामाजिक आकांक्षाओं को किस प्रकार अभिव्यक्त करता है? क्या यह केवल आशावादी गीत है अथवा इसमें सामाजिक परिवर्तन और प्रतिरोध की चेतना भी निहित है? प्रस्तुत शोध–पत्र इन्हीं प्रश्नों का विश्लेषण करता है।[4]

शोध के उद्देश्य

1. "जैंता एक दिन तो आलो" में अभिव्यक्त लोकसंस्कृति का अध्ययन करना।
2. गीत में प्रयुक्त कुमाऊँनी जनभाषा की भूमिका का विश्लेषण करना।
3. गीत में निहित सामाजिक चेतना और जनप्रतिरोध के स्वर को स्पष्ट करना।
4. गिर्दा की काव्य–दृष्टि के सांस्कृतिक पक्ष का मूल्यांकन करना।
5. उत्तराखंड की सांस्कृतिक स्मृति के संदर्भ में गीत की प्रासंगिकता को रेखांकित करना।[5]

परिकल्पना

प्रस्तुत शोध की परिकल्पना यह है कि "जैंता एक दिन तो आलो" केवल एक लोकगीत नहीं, बल्कि उत्तराखंड की सांस्कृतिक स्मृति, जनभाषा और सामाजिक चेतना का सशक्त काव्यात्मक दस्तावेज है। इसमें व्यक्त परिवर्तन की आकांक्षा और समानता का स्वप्न इसे जनपक्षधर साहित्य की श्रेणी में स्थापित करते हैं।[6]

शोध–पद्धति

यह शोध गुणात्मक, विश्लेषणात्मक तथा पाठ–केंद्रित पद्धति पर आधारित है। अध्ययन के लिए "जैंता एक दिन तो आलो" को प्राथमिक स्रोत के रूप में ग्रहण किया गया है। गीत की पंक्तियों का क्रमवार विश्लेषण करते हुए उसके प्रतीकों, सांस्कृतिक संकेतों और सामाजिक अर्थों की व्याख्या की गई है।[7]

गिर्दा : लोककवि और जनसंस्कृति के प्रतिनिधि

गिर्दा का साहित्य लोकजीवन की धड़कनों से निर्मित साहित्य है। उन्होंने कविता को पुस्तकालयों की सीमाओं से निकालकर जनसमुदाय के बीच पहुँचाया। उनके गीत उत्तराखंड के सामाजिक आंदोलनों, विशेषतः उत्तराखंड राज्य आंदोलन के दौरान व्यापक रूप से गाए गए।[8]

गिर्दा का विश्वास था कि साहित्य तभी सार्थक है जब वह समाज की वास्तविक समस्याओं से जुड़ा हो। उनकी रचनाओं में श्रमशील मनुष्य, पहाड़ की स्त्रियाँ, प्रवासी युवा, किसान और

सामान्य नागरिक बार–बार उपस्थित होते हैं। "जैंता एक दिन तो आलो" इसी जनवादी दृष्टि का प्रतिनिधि गीत है।[9]

जैंता एक दिन तो आलो : एक पाठ–विश्लेषण

गीत की पहली पंक्तियाँ हैं—

'"ततुक नी लगा उदेख
घुनन मुनइ नि टेक
जैंता एक दिन तो आलो उ दिन यो दुनी में।"[10]

इन पंक्तियों में कवि आशा और विश्वास का संदेश देता है। जीवन में चाहे कितनी भी कठिनाइयाँ क्यों न हों, परिवर्तन का दिन अवश्य आएगा। यहाँ "जैंता" शब्द केवल संभावना नहीं, बल्कि दृढ़ विश्वास का प्रतीक है। यह विश्वास लोकजीवन की संघर्षशीलता का प्रतिनिधित्व करता है।

दूसरे पद में कवि लिखता है—

'"जै दिन कठुलि रात ब्यालि
पौ फाटला, कौ कड़ा।"[11]

"कठुलि रात" सामाजिक अंधकार, अन्याय और दमन का प्रतीक है, जबकि "पौ फाटला" एक नए युग, नए समाज और नई चेतना का प्रतीक बन जाता है। गिर्दा यहाँ लोकजीवन के सहज प्रतीकों के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा को अभिव्यक्त करते हैं।

तीसरे पद में कवि प्रतिरोध की स्पष्ट चेतना व्यक्त करता है—

'"जै दिन चोर नी फलाल
कै कै जोर नी चलौल।"[12]

यहाँ "चोर" शोषणकारी व्यवस्था का प्रतीक है। कवि ऐसे समाज की कल्पना करता है जहाँ अन्याय, भ्रष्टाचार और दमनकारी शक्तियों का प्रभाव समाप्त हो जाए। यह गीत की जनवादी चेतना का सबसे सशक्त पक्ष है।

चौथे पद में समानता और सामूहिकता का आदर्श प्रस्तुत किया गया है—

'"जै दिन नान–ठुलो नि रौलो
जै दिन त्योर–म्योरो नि होलो।"[13]

यहाँ "नान–ठुलो" सामाजिक ऊँच–नीच का और "त्योर–म्योरो" स्वार्थपरक विभाजन का प्रतीक है। कवि ऐसे समाज की कल्पना करता है जहाँ मनुष्य–मनुष्य के बीच कोई भेदभाव न हो। यह लोकतांत्रिक और मानवीय मूल्यों की स्थापना का स्वप्न है।

गीत के अंतिम पदों में कवि लिखता है—

'"चाहे हम नि ल्यै सकूँ
चाहे तुम नि लै सकौ
मगर क्वे न क्वे तो ल्यालो उदिन यो दुनी में।"[14]

तथा

'"वि दिन हम निं हुँलो लेकिन
हम लै वि दिनै हुँलो।"[15]

इन पंक्तियों में कवि की ऐतिहासिक दृष्टि स्पष्ट होती है। वह मानता है कि परिवर्तन किसी एक व्यक्ति या पीढ़ी का कार्य नहीं होता। यदि वर्तमान पीढ़ी अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँचती, तो आने वाली पीढ़ियाँ उस स्वप्न को साकार करेंगी। यह दृष्टि सामूहिक संघर्ष और ऐतिहासिक निरंतरता की चेतना को अभिव्यक्त करती है।

लोकसंस्कृति का स्वर

यह गीत उत्तराखंड की लोकसंस्कृति की मूल विशेषताओं को अभिव्यक्त करता है। पहाड़ी समाज में सामूहिक श्रम, पारस्परिक सहयोग और भविष्य के प्रति आशावाद जीवन के आवश्यक तत्व हैं। गीत में व्यक्त समानता, साझेदारी और न्याय की आकांक्षा इन्हीं सांस्कृतिक मूल्यों से जुड़ी हुई है।[16]

गीत की संरचना भी लोकगीतों की परंपरा का अनुसरण करती है। प्रत्येक पद के अंत में दोहराई जाने वाली पंक्ति "जैंता एक दिन तो आलो उ दिन यो दुनी में" सामूहिक गायन की परंपरा को सुदृढ़ करती है। यह दोहराव केवल शैलीगत नहीं, बल्कि सांस्कृतिक भी है।[17]

जनभाषा और सांस्कृतिक अस्मिता

कुमाऊँनी भाषा इस गीत की आत्मा है। यदि यही विचार मानक हिंदी में व्यक्त किए जाते, तो संभवतः उनका प्रभाव इतना गहरा न होता। लोकभाषा इस गीत को सांस्कृतिक प्रामाणिकता प्रदान करती है।[18]

"कठुलि रात", "पौ फाटला", "त्योर–म्योरो" और "नान–ठुलो" जैसे शब्द केवल अर्थ नहीं देते, बल्कि अपने साथ पूरे सांस्कृतिक अनुभव को भी लेकर आते हैं। यही कारण है कि यह गीत केवल पढ़ा नहीं जाता, बल्कि महसूस किया जाता है।[19]

लोकभाषा के माध्यम से गिर्दा सांस्कृतिक अस्मिता को भी सुदृढ़ करते हैं। वे यह सिद्ध करते हैं कि क्षेत्रीय भाषाएँ केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि सांस्कृतिक स्मृति की संवाहक भी हैं।[20]

सामाजिक चेतना और जनप्रतिरोध

गीत का मूल स्वर सामाजिक चेतना है। इसमें व्यक्त प्रतिरोध किसी विशेष व्यक्ति या संस्था के विरुद्ध नहीं, बल्कि अन्यायपूर्ण व्यवस्था के विरुद्ध है। गिर्दा का मानना है कि समाज में परिवर्तन तभी संभव है जब जनता अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक हो।[21]

गीत का जनवादी चरित्र उसे सामान्य लोकगीतों से अलग बनाता है। यहाँ आशा निष्क्रिय नहीं, बल्कि परिवर्तनकारी शक्ति है। गीत लोगों को केवल सांत्वना नहीं देता, बल्कि उन्हें संघर्ष और परिवर्तन के लिए प्रेरित करता है।[22]

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि "जैंता एक दिन तो आलो" उत्तराखंड की लोकसंस्कृति, जनभाषा और सामाजिक चेतना का प्रतिनिधि जनगीत है। इसमें आशा, प्रतिरोध, समानता और न्याय के मूल्य एक साथ उपस्थित हैं। गिर्दा ने लोकभाषा के माध्यम से जिस परिवर्तनकारी चेतना को अभिव्यक्ति दी है, वह आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी इसके रचनाकाल में थी।

यह गीत उत्तराखंड की सांस्कृतिक स्मृति को सुरक्षित रखने के साथ–साथ सामाजिक परिवर्तन की प्रेरणा भी देता है। इसी कारण यह केवल एक साहित्यिक रचना नहीं, बल्कि जनचेतना का सांस्कृतिक दस्तावेज है। गिर्दा का यह गीत हमें विश्वास दिलाता है कि अन्याय और विषमता चाहे कितनी भी प्रबल क्यों न हों, एक दिन न्याय, समानता और मानवीयता का सूर्योदय अवश्य होगा।

संदर्भ

1. द्विवेदी, हजारी प्रसाद। साहित्य और संस्कृति। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009 पृ. 41।
2. पाठक, शेखर। उत्तराखण्ड : संस्कृति और समाज। पहाड़ प्रकाशन, नैनीताल, 2011। पृ. 88।
3. तिवारी, गिरीश 'गिर्दा'। जैंता एक दिन तो आलो : हिन्दी एवं कुमाऊँनी कविताएँ। पहाड़ प्रकाशन, नैनीताल, 2011।
4. पाण्डेय, मैनेजर। साहित्य और समाजशास्त्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008। पृ. 67।
5. वही।
6. Assmann, Jan. Cultural Memory and Early Civilization, Cambridge University Press, 2011, p- 37.

7. Halbwachs, Maurice. On Collective Memory, University of Chicago Press, 1992, p- 51.
8. पाठक, शेखर, पूर्वोक्त, पृ. 143।
9. त्रिपाठी, विश्वनाथ। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014। पृ. 74।
10. तिवारी, गिरीश 'गिर्दा', पद 1।
11. वही, पद 2।
12. वही, पद 3।
13. वही, पद 4।
14. वही, पद 5।
15. वही, पद 6।
16. पाठक, शेखर, पूर्वोक्त, पृ. 151 ।
17. त्रिपाठी, विश्वनाथ, पूर्वोक्त, पृ. 83।
18. सिंह, नामवर। इतिहास और आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019। पृ. 129।
19. वही।
20. Assmann, Jan, op. cit., p- 62-
21. पाण्डेय, मैनेजर, पूर्वोक्त, पृ. 95।
22. त्रिपाठी, विश्वनाथ, पूर्वोक्त, पृ. 91।